नईदुनिया

संपादकीय

रिश्तों का कड़वा सचः जिन्हें पाला-पोसा, पढ़ाया, उन्होंने मुखाग्नि तक नहीं दी

समाज में बेटियों को लक्ष्मी कहा जाता है। उन्हें देवी का दर्जा दिया जाता है। माता-पिता अपनी पूरी जिंदगी बेटियों को पालने-पोसने, पढ़ाने-लिखाने, आत्मनिर्भर बनाने और उनकी शादी कराने में लगा देते हैं। यह सोचकर कि वे बुढ़ापे की लाठी बनेंगी। लेकिन आज उसी रिश्ते का सबसे कड़वा सच समाज के सामने है।

मुंबई के बड़े कपड़ा व्यापारी रहे शिवचरण गुप्ता की कहानी इसी सच को उजागर करती है। उन्होंने अपनी तीन बेटियों को पाल-पोसकर बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया, उनकी शादी की और अपनी सामर्थ्य के अनुसार सब कुछ दिया। लेकिन जीवन के अंतिम पड़ाव पर जब वे बीमार हुए और उनका निधन हुआ, तब तीनों बेटियां नहीं पहुंचीं। मां की मृत्यु पर भी कोई नहीं आया और पिता के अंतिम संस्कार में भी समाज के लोगों को आगे आना पड़ा। वीडियो कॉल पर औपचारिकता निभाई गई, लेकिन कंधा देने तक कोई नहीं पहुंचा।

सोचिए, वह दर्द कितना बड़ा होगा जब एक पिता अपनी अंतिम सांसें ले रहा हो और उसे पता हो कि जिन बेटियों के लिए उसने सब कुछ किया, वे उसके पास नहीं हैं। जब अर्थी उठे और कंधा देने वाला कोई अपना न हो, जब मुखाग्नि कोई अनजान दे और खून के रिश्ते फोन पर संवेदना व्यक्त कर अपना कर्तव्य पूरा मान लें।

यह केवल शिवचरण गुप्ता का मामला नहीं, बल्कि आज के समय का आईना है। हम बेटियों को आत्मनिर्भर बनाने की बात करते हैं, उन्हें उच्च शिक्षा दिलाते हैं और अच्छे घरों में विवाह कराते हैं, लेकिन रिश्तों की बुनियाद में संवेदना और संस्कार देना भूल जाते हैं। पढ़ाई के साथ यह भी सिखाना जरूरी है कि माता-पिता की बीमारी में साथ रहना, बुढ़ापे में उनका सहारा बनना और अंतिम समय में उनके पास होना सबसे बड़ा दायित्व है।

आज की पीढ़ी करियर और पैसे की दौड़ में इतनी आगे निकल गई है कि रिश्ते पीछे छूटते जा रहे हैं। शादी के बाद बेटियां अपने परिवार और बच्चों में व्यस्त हो जाती हैं। बूढ़े माता-पिता अकेले रह जाते हैं। फोन पर दो मिनट बात कर लेना ही कर्तव्य समझ लिया गया है और मृत्यु के बाद व्यस्तता सबसे बड़ा बहाना बन जाती है।

सबसे अधिक पीड़ा तब होती है जब जिन माता-पिता ने दिन-रात मेहनत कर बच्चों को इंसान बनाया, वही बच्चे अंतिम समय में मुंह मोड़ लेते हैं। यह केवल आर्थिक मदद का नहीं, भावनात्मक जुड़ाव का प्रश्न है। एक स्पर्श, एक आंसू और एक कंधा ही रिश्तों की असली पहचान होते हैं।

हमारे शास्त्रों में कहा गया है, 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव।' लेकिन आज देवतुल्य माता-पिता को अकेला छोड़ दिया जाता है। यह आधुनिकता नहीं, आत्मकेंद्रितता है। समाज को सोचना होगा कि बच्चों को केवल डिग्री नहीं, संस्कार भी दिए जाएं। सफलता का वास्तविक पैमाना बैंक बैलेंस नहीं, बल्कि बुढ़ापे में माता-पिता की आंखों का संतोष है। अंततः अर्थी के समय वही संस्कार साथ खड़े होते हैं, डिग्रियां नहीं।

आजकल

अब कोर्ट का नोटिस फोन पर आएगा, हाईकोर्ट का बड़ा फैसला

मध्य प्रदेश हाईकोर्ट ने न्याय व्यवस्था को आधुनिक बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण फैसला लिया है। अब अदालतों की सुनवाई की तारीख, नोटिस और अन्य सूचनाएं वादकारियों तथा अधिवक्ताओं को कागज पर नहीं, बल्कि एसएमएस, व्हाट्सएप और ई-मेल के माध्यम से भेजी जाएंगी। इसके साथ ही दस्तावेजों की फोटोकॉपी के स्थान पर स्कैन कॉपी को मान्यता दी जाएगी और अदालतों में डबल साइड प्रिंट अनिवार्य होगा।

इस फैसले का उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण के साथ न्याय प्रक्रिया को तेज, सरल और कम खर्चीला बनाना है। हर वर्ष अदालतों में करोड़ों पन्नों का उपयोग होता है, जिससे कागज, समय और धन तीनों की बड़ी खपत होती है। नई व्यवस्था से कागज की बचत होगी, पेड़ों का संरक्षण होगा और कार्बन उत्सर्जन भी कम होगा।

डिजिटल सूचना व्यवस्था से वादकारियों को सबसे अधिक राहत मिलेगी। उन्हें बार-बार अदालत के चक्कर नहीं लगाने पड़ेंगे और न ही डाक का इंतजार करना होगा। मोबाइल पर सूचना मिलते ही वे समय पर तैयारी कर सकेंगे। अधिवक्ताओं को भी फाइलों और फोटोकॉपी के अतिरिक्त खर्च से राहत मिलेगी। डिजिटल रिकॉर्ड सुरक्षित रहेगा और जरूरत पड़ने पर कहीं से भी देखा जा सकेगा।

हाईकोर्ट ने यह भी स्पष्ट किया है कि रजिस्ट्री और प्रशासनिक कार्य अब ऑनलाइन पोर्टल के माध्यम से किए जाएंगे। इससे पारदर्शिता बढ़ेगी और भ्रष्टाचार की संभावना कम होगी। हालांकि ग्रामीण क्षेत्रों के वादकारियों और वरिष्ठ अधिवक्ताओं के लिए डिजिटल व्यवस्था को सहज बनाने हेतु हेल्प डेस्क, मजबूत सर्वर और साइबर सुरक्षा की आवश्यकता होगी।

यदि इस व्यवस्था को प्रभावी ढंग से लागू किया गया तो मध्य प्रदेश की न्याय व्यवस्था देश के लिए एक उदाहरण बन सकती है। इससे कागज बचेगा, पर्यावरण सुरक्षित रहेगा और न्याय प्रक्रिया अधिक तेज तथा सुगम होगी।

संसद में संग्रामः हंगामे के बीच गायब हो रही चर्चा

अध्यक्ष को दोनों पक्षों को एक साथ बैठाकर समय तय करना चाहिए। विपक्ष को अपनी मांग पर अड़े रहने के साथ यह भी समझना होगा कि केवल हंगामे से समस्या का समाधान नहीं होगा। सत्ता पक्ष को भी यह समझना होगा कि बिना मंत्री के बयान के विपक्ष मानने वाला नहीं है। प्रधानमंत्री और गृह मंत्री का सदन में आना केवल विपक्ष की मांग नहीं, बल्कि संसदीय परंपरा भी है। जब देश में कोई बड़ा मुद्दा होता है तो सरकार सदन को भरोसे में लेती है। अभी जनता को भी यही भरोसा चाहिए कि सरकार कुछ छिपा नहीं रही।

संसद का मानसून सत्र लगातार हंगामे की भेंट चढ़ता जा रहा है और सदन के भीतर लोकतंत्र की सबसे बड़ी आवाज अब नारों और पोस्टरों के शोर में दब गई है। छात्रों पर हिंसा, चंदा चोरी और सुरक्षा के मुद्दों को लेकर विपक्ष लगातार हंगामा कर रहा है, जबकि सत्ता पक्ष भी उसी लहजे में पलटवार कर रहा है। इस टकराव के बीच सबसे बड़ा सवाल यह है कि आखिर चर्चा कौन रोक रहा है और जवाबदेही से कौन भाग रहा है? गृह मंत्री अमित शाह के सदन में बयान की मांग को लेकर विपक्ष अड़ा हुआ है, जबकि सत्ता पक्ष यह पूछ रहा है कि नेता प्रतिपक्ष चर्चा से मुंह क्यों मोड़ रहे हैं। दोनों ओर से आरोप-प्रत्यारोप का दौर चल रहा है और इस बीच आम जनता टीवी स्क्रीन पर केवल हंगामा देख रही है, समाधान नहीं।

वर्तमान गतिरोध की शुरुआत छात्रों से जुड़े दो बड़े मुद्दों से हुई। एक ओर देश के कई हिस्सों में कोचिंग सेंटरों और विश्वविद्यालयों में छात्रों के साथ मारपीट तथा पुलिस कार्रवाई की खबरें आईं, तो दूसरी ओर राजनीतिक दलों को मिलने वाले चंदे में पारदर्शिता को लेकर नए खुलासे सामने आए। विपक्ष का आरोप है कि सत्ता के करीबी संगठनों को चंदे के नाम पर मोटी रकम मिली और उसके बदले नीतियों में बदलाव किया गया। वहीं सत्ता पक्ष का कहना है कि यह पूरी तरह कानूनी प्रक्रिया के तहत हुआ है और विपक्ष बेबुनियाद आरोप लगाकर सदन का समय खराब कर रहा है। इन दोनों मुद्दों को लेकर विपक्ष ने गृह मंत्री से सदन में विस्तृत बयान मांगा है, क्योंकि कानून-व्यवस्था और आंतरिक सुरक्षा सीधे गृह मंत्रालय से जुड़ी है।

लेकिन बयान मांगने के नाम पर सदन की कार्यवाही हर दिन स्थगित हो रही है। विपक्ष का तर्क है कि जब तक गृह मंत्री और प्रधानमंत्री सदन में आकर स्थिति स्पष्ट नहीं करते, तब तक वे किसी अन्य मुद्दे पर चर्चा नहीं करेंगे। दूसरी ओर सत्ता पक्ष का आरोप है कि विपक्ष खुद चर्चा नहीं चाहता, बल्कि केवल कैमरे के सामने नारेबाजी करके सरकार को घेरना चाहता है। सत्ताधारी सांसदों ने सदन में कहा कि नेता प्रतिपक्ष को नियमों के तहत नोटिस देना चाहिए और फिर चर्चा में भाग लेना चाहिए, लेकिन वे ऐसा करने के बजाय सदन से वॉकआउट कर जाते हैं और बाहर प्रेस कॉन्फ्रेंस करके सरकार पर हमला करते हैं। इस पर विपक्ष का जवाब है कि यदि सरकार चर्चा के लिए गंभीर है तो पहले गृह मंत्री सदन में आएं और छात्रों पर हुई हिंसा की जिम्मेदारी तय करें।

संसद में स्थिति हर दिन बिगड़ती जा रही है। एक दिन कागज फाड़े जाते हैं, दूसरे दिन तख्तियां लहराई जाती हैं। अध्यक्ष बार-बार अपील करते हैं कि सदन चलने दें, लेकिन कोई सुनने को तैयार नहीं है। इस बीच कई महत्वपूर्ण विधेयक बिना चर्चा के पारित हो रहे हैं और कई जरूरी सवाल बिना जवाब के रह जा रहे हैं। लोकतंत्र में सदन चर्चा और बहस के लिए होता है, लेकिन जब वही सदन अखाड़ा बन जाए तो जनता का भरोसा टूटता है। अभी जनता यही देख रही है कि सत्ता पक्ष कह रहा है विपक्ष भाग रहा है और विपक्ष कह रहा है सरकार भाग रही है। इस बीच संसदीय प्रक्रिया पिस रही है।

छात्रों पर हिंसा का मुद्दा इस पूरे विवाद की सबसे संवेदनशील कड़ी है। देशभर के युवा पहले से ही रोजगार और शिक्षा को लेकर चिंतित हैं और जब उन पर लाठीचार्ज की तस्वीरें सामने आती हैं तो आक्रोश स्वाभाविक है। विपक्ष का कहना है कि सरकार छात्रों की आवाज दबाना चाहती है और पुलिस को खुली छूट दी गई है। सत्ता पक्ष का कहना है कि कुछ तत्व छात्रों को भड़का रहे हैं और हिंसा के पीछे राजनीतिक साजिश है। इस सच को सामने लाने का सबसे बेहतर मंच संसद ही है, लेकिन वहां चर्चा ही नहीं हो रही तो सच सामने कैसे आएगा? गृह मंत्री का बयान इसलिए जरूरी है, क्योंकि वे तथ्य और आंकड़ों के साथ बता सकते हैं कि कहां चूक हुई और आगे क्या कदम उठाए जाएंगे।

चंदा चोरी का आरोप भी कम गंभीर नहीं है। चुनावी चंदे में पारदर्शिता लोकतंत्र की बुनियाद है। अगर आम जनता को यह लगे कि नीतियां चंदे के बदले बन रही हैं तो लोकतंत्र से भरोसा उठ जाएगा। विपक्ष ने दस्तावेज दिखाकर आरोप लगाए हैं और जांच की मांग की है। सत्ता पक्ष ने इसे झूठा प्रचार बताया है, लेकिन आरोप और सफाई दोनों सदन के भीतर होने चाहिए, बाहर प्रेस के सामने नहीं। क्योंकि सदन में मंत्री जवाब देते हैं, सवाल पूछे जाते हैं और कार्यवाही रिकॉर्ड होती है। यही लोकतांत्रिक जवाबदेही है।

इस गतिरोध से निकलने का रास्ता केवल एक है—संवाद और समझौता। अध्यक्ष को दोनों पक्षों को एक साथ बैठाकर समय तय करना चाहिए। विपक्ष को अपनी मांग पर अड़े रहने के साथ यह भी समझना होगा कि केवल हंगामे से समस्या का समाधान नहीं होगा। सत्ता पक्ष को भी यह समझना होगा कि बिना मंत्री के बयान के विपक्ष मानने वाला नहीं है। प्रधानमंत्री और गृह मंत्री का सदन में आना केवल विपक्ष की मांग नहीं, बल्कि संसदीय परंपरा भी है। जब देश में कोई बड़ा मुद्दा होता है तो सरकार सदन को भरोसे में लेती है। अभी जनता को भी यही भरोसा चाहिए कि सरकार कुछ छिपा नहीं रही।

इस पूरे प्रकरण का सबसे बड़ा नुकसान उन छात्रों को हो रहा है, जिनके मुद्दे को लेकर हंगामा हो रहा है। उनके भविष्य, उनकी सुरक्षा और उनकी शिक्षा पर चर्चा होनी थी, लेकिन वह चर्चा कहीं पीछे छूट गई। इसी तरह चंदे की पारदर्शिता पर कानून बनना था, लेकिन वह भी फाइलों में दब गया। जब संसद काम नहीं करेगी तो सड़क पर आक्रोश बढ़ेगा और फिर वही लोग कहेंगे कि संसद कुछ नहीं करती। इसलिए दोनों पक्षों को सोचना होगा कि वे किसके लिए चुने गए हैं—नारेबाजी के लिए या समाधान के लिए।

इतिहास गवाह है कि सबसे कठिन मुद्दे भी संसद में चर्चा से हल हुए हैं, चाहे वह आर्थिक संकट हो, युद्ध हो या सामाजिक बदलाव। जब नेता सदन में बैठकर एक-दूसरे की बात सुनते हैं तो रास्ता निकलता है। अभी जरूरत है कि सत्ता पक्ष विपक्ष की मांग को अहमियत दे और विपक्ष सरकार की मंशा पर सवाल उठाने के साथ चर्चा में भी भाग ले। गृह मंत्री को आकर तथ्य रखने चाहिए और नेता प्रतिपक्ष को उन तथ्यों पर सवाल करने चाहिए। यही संसद की खूबसूरती है। भाग कौन रहा है? अगर सरकार के पास जवाब है तो उसे सदन में देना चाहिए और अगर विपक्ष के पास सबूत हैं तो उन्हें सदन में रखना चाहिए। शोर से न छात्रों को न्याय मिलेगा और न लोकतंत्र को मजबूती मिलेगी। संसद संग्राम का अखाड़ा नहीं, बल्कि समाधान का मंदिर है और उसे उसी रूप में लौटना होगा। वरना आने वाली पीढ़ी पूछेगी कि जब देश को आपसे जवाब चाहिए था, तब आप केवल एक-दूसरे पर आरोप लगा रहे थे।

इसलिए अब समय आ गया है कि हंगामा बंद हो और चर्चा शुरू हो। गृह मंत्री सदन में आएं, प्रधानमंत्री भी उपस्थित हों और नेता प्रतिपक्ष भी अपनी बात रखें। छात्र हिंसा और चंदा चोरी जैसे मुद्दों पर देश को सच्चाई चाहिए और वह सच्चाई केवल संसद के पटल से ही सामने आ सकती है। अगर ऐसा हुआ तो यह सत्र भी इतिहास में एक उदाहरण बनेगा कि टकराव के बाद भी लोकतंत्र ने संवाद को चुना। अगर ऐसा नहीं हुआ तो यह सत्र इस बात के लिए याद रखा जाएगा कि कैसे जरूरी मुद्दे शोर की भेंट चढ़ गए।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

नो इंश्योरेंस, नो फ्यूलः सुप्रीम कोर्ट की सख्ती

सड़क सुरक्षा और वाहन बीमा को लेकर सुप्रीम कोर्ट ने एक संतुलित फैसला सुनाया है। एक तरफ कोर्ट ने कहा है कि फिलहाल पूरे देश में निजी वाहनों के लिए थर्ड पार्टी इंश्योरेंस को अनिवार्य नहीं किया जाएगा, वहीं दूसरी तरफ कुछ राज्यों में बिना बीमा के पेट्रोल और डीजल न देने की नीति को लागू करने के लिए हरी झंडी भी दे दी है। कोर्ट की इस दोहरी सोच ने आम आदमी को राहत भी दी है और सरकारों को सख्ती के लिए रास्ता भी खोल दिया है।

मामला देश में बढ़ती सड़क दुर्घटनाओं और उनमें पीड़ितों को समय पर मुआवजा न मिलने से जुड़ा था। केंद्र सरकार और सड़क परिवहन मंत्रालय ने सुप्रीम कोर्ट में प्रस्ताव रखा था कि सभी निजी वाहनों के लिए थर्ड पार्टी बीमा अनिवार्य किया जाए, ताकि दुर्घटना होने पर पीड़ित परिवार को तुरंत आर्थिक मदद मिल सके। लेकिन कोर्ट ने इस प्रस्ताव पर फिलहाल रोक लगा दी। कोर्ट का कहना था कि देश में करीब 30 करोड़ 48 लाख पंजीकृत वाहन हैं, जिनमें से लगभग 16 करोड़ 54 लाख वाहन, यानी 56 प्रतिशत वाहन, बिना बीमा के चल रहे हैं। ऐसे में अचानक अनिवार्यता लागू करने से आम जनता पर आर्थिक बोझ बढ़ेगा और बीमा कंपनियों तथा आरटीओ के पास भी इसे लागू करने का पूरा तंत्र नहीं है।

हालांकि, सुप्रीम कोर्ट ने इस मुद्दे की गंभीरता को भी स्वीकार किया। कोर्ट ने कहा कि देश में हर साल सवा लाख से ज्यादा लोग सड़क दुर्घटनाओं में मारे जाते हैं और इनमें 22 प्रतिशत मौतें बिना बीमा वाले वाहनों से जुड़ी होती हैं। इसलिए इस समस्या को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसी कारण कोर्ट ने केंद्र सरकार को तीन महीने में एक समिति बनाने का निर्देश दिया है, जो बीमा की अनिवार्यता, वैकल्पिक व्यवस्था और पीड़ितों को त्वरित मुआवजा देने के तरीकों पर अपनी रिपोर्ट देगी।

इसी बीच कुछ राज्यों ने अपनी ओर से सख्त कदम उठाने शुरू कर दिए हैं। दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में परिवहन विभाग और पुलिस ने 'नो इंश्योरेंस, नो फ्यूल' नीति लागू करने की तैयारी कर ली है। इसके तहत पेट्रोल पंपों पर ऑटोमेटिक नंबर प्लेट रिकग्निशन सिस्टम लगाए जाएंगे, जो बिना बीमा वाले वाहनों की पहचान करेंगे और ऐसे वाहनों को ईंधन देने से मना कर दिया जाएगा। इसके अलावा आरटीओ और ट्रैफिक पुलिस को रियल टाइम डेटा मिलेगा, ताकि बिना बीमा वाले वाहनों पर तुरंत कार्रवाई हो सके।

सुप्रीम कोर्ट ने इन राज्य स्तरीय आदेशों पर रोक नहीं लगाई है, बल्कि कहा है कि यदि राज्य सरकारें तकनीक और जागरूकता के साथ इसे लागू करती हैं तो इसमें कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन कोर्ट ने यह भी स्पष्ट किया कि लोगों को बीमा कराने के लिए पर्याप्त समय दिया जाए और बीमा प्रीमियम को तर्कसंगत बनाया जाए, ताकि गरीब और मध्यम वर्ग पर अतिरिक्त बोझ न पड़े।

कोर्ट ने बीमा कंपनियों और आईआरडीएआई को भी निर्देश दिए हैं कि वे चार पहिया वाहनों के लिए चार वर्ष और नए दोपहिया वाहनों के लिए पांच वर्ष के थर्ड पार्टी बीमा को बढ़ाकर छह वर्ष करने पर विचार करें, ताकि लोगों को बार-बार नवीनीकरण की झंझट न हो। साथ ही ट्रैफिक पुलिस से कहा गया है कि वह केवल चालान काटने के बजाय लोगों को बीमा के फायदे भी समझाए।

सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला व्यावहारिक है। देश में इतनी बड़ी संख्या में बिना बीमा वाले वाहन हैं कि एक झटके में सबको दायरे में लाना संभव नहीं है। लेकिन साथ ही राज्य सरकारों को प्रयोग करने की छूट देकर कोर्ट ने यह संदेश भी दिया है कि लापरवाही अब बर्दाश्त नहीं होगी। 'नो इंश्योरेंस, नो फ्यूल' जैसी नीति से धीरे-धीरे लोगों में जागरूकता आएगी और बीमा का दायरा बढ़ेगा।

अब सबसे बड़ी चुनौती क्रियान्वयन की है। पेट्रोल पंपों पर तकनीक लगाना, पुलिस और आरटीओ के बीच समन्वय बनाना तथा लोगों को सस्ता बीमा उपलब्ध कराना, ये तीनों काम यदि साथ-साथ हुए तो ही इस योजना का लाभ मिलेगा। अन्यथा यह केवल कागजों तक सीमित रह जाएगी।

आम जनता के लिए संदेश साफ है कि भले ही अभी पूरे देश में थर्ड पार्टी बीमा अनिवार्य न हुआ हो, लेकिन यदि आप ऐसे राज्य में रहते हैं, जहां 'नो इंश्योरेंस, नो फ्यूल' लागू हो गया है, तो बिना बीमा के वाहन चलाना मुश्किल होगा और कानूनी कार्रवाई का खतरा भी रहेगा। इसलिए बेहतर है कि अभी से अपना बीमा नवीनीकृत करा लें, क्योंकि बीमा केवल कानून की मजबूरी नहीं, बल्कि आपके परिवार और सड़क पर चल रहे दूसरे लोगों की सुरक्षा की भी गारंटी है।

सुप्रीम कोर्ट ने फिलहाल सख्ती और राहत, दोनों का रास्ता चुना है। एक तरफ देशभर में अनिवार्यता पर रोक लगाकर राहत दी है, तो दूसरी तरफ राज्यों को सख्त कदम उठाने की अनुमति देकर यह संकेत दिया है कि बिना बीमा के वाहन चलाना अब ज्यादा दिन तक संभव नहीं होगा। आने वाले महीनों में यह देखना दिलचस्प होगा कि सरकार समिति की रिपोर्ट के आधार पर क्या नया मॉडल लाती है और राज्य 'नो इंश्योरेंस, नो फ्यूल' नीति को कितनी सफलता से लागू कर पाते हैं।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

370 हटने के सात सालः एक पीढ़ी ने देखा सपनों को सच होते

पाँच अगस्त 2019 का दिन जम्मू-कश्मीर के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ बनकर आया। उस दिन केंद्र सरकार ने अनुच्छेद 370 को हटाकर राज्य को दो केंद्र शासित प्रदेशों में विभाजित कर दिया। उस समय कई आशंकाएं थीं, कई सवाल थे और बहुत-सी अनिश्चितताएं थीं। कहा जा रहा था कि घाटी में अशांति बढ़ेगी, पथराव होगा, बंद होंगे और हालात बिगड़ेंगे। लेकिन बीते सात वर्षों ने उन सभी आशंकाओं को गलत साबित कर दिया। आज जम्मू-कश्मीर बदल चुका है और यह बदलाव सिर्फ आंकड़ों में नहीं, बल्कि लोगों की जिंदगी और सोच में भी दिखाई देता है।

सात साल पहले लाल चौक को आतंक और बंद का प्रतीक माना जाता था। तिरंगा लहराने पर हमले होते थे, स्कूल-कॉलेज बंद रहते थे और युवा डर के साए में जीते थे। लेकिन आज वही लाल चौक देशभक्ति का केंद्र बन गया है। यहां तिरंगा यात्राएं निकलती हैं, लोग बिना डर के घूमते हैं, कॉफी पीते हैं और दोस्तों के साथ समय बिताते हैं। जो युवा पहले हाथों में पत्थर उठाते थे, आज वे लैपटॉप और कैमरा लेकर स्टार्टअप की बात करते हैं। पर्यटन बढ़ा है, कारोबार बढ़ा है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि लोगों के मन से डर काफी हद तक खत्म हुआ है।

आंकड़े भी इस बदलाव की गवाही दे रहे हैं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार, 2019 के बाद से घाटी में आतंकी घटनाओं में भारी गिरावट आई है। 2018 में जहां 1,328 आतंकी घटनाएं हुई थीं, वहीं 2023 तक यह संख्या घटकर 228 रह गई। 2019 से 2025 के बीच सुरक्षा बलों के 213 जवान शहीद हुए, जबकि 2010 से 2018 के बीच यह संख्या 858 थी। नागरिकों की मौत में भी 77 प्रतिशत की कमी आई है। 2019 से 2024 के बीच 382 नागरिक मारे गए, जबकि उससे पहले के वर्षों में यह संख्या 672 थी। पथराव की घटनाएं लगभग शून्य हो गई हैं और हड़ताल तथा बंद की संस्कृति समाप्त हो गई है। स्कूल 90-90 दिन तक बंद रहने की खबरें अब अतीत की बात लगती हैं।

विकास के मोर्चे पर भी जम्मू-कश्मीर ने लंबी छलांग लगाई है। केंद्र सरकार की योजनाएं सीधे लोगों तक पहुंच रही हैं। सड़क, रेल और हवाई कनेक्टिविटी बेहतर हुई है। उधमपुर-श्रीनगर-बारामूला रेल लिंक बनने से घाटी देश के बाकी हिस्सों से जुड़ गई है। आईआईटी, आईआईएम और एम्स जैसे संस्थान खुलने से शिक्षा के अवसर बढ़े हैं। पर्यटन में रिकॉर्ड बढ़ोतरी हुई है। 2024 में दो करोड़ से अधिक पर्यटक कश्मीर पहुंचे, जो पहले कभी नहीं हुआ था। स्थानीय युवाओं को रोजगार मिल रहा है, फिल्मों की शूटिंग फिर से शुरू हुई है और कश्मीरी हस्तशिल्प को नया बाजार मिला है।

सबसे बड़ा बदलाव मानसिकता में आया है। पहले एक पूरी पीढ़ी ने बंदूक, डर और अलगाव देखा था, लेकिन आज की युवा पीढ़ी मोबाइल, इंटरनेट और अवसर देख रही है। उन्हें भारत के साथ जुड़कर आगे बढ़ने का अवसर मिला है। पंचायत चुनाव, विधानसभा चुनाव और स्थानीय निकाय चुनावों में लोगों की भागीदारी बढ़ी है। यह इस बात का प्रमाण है कि लोकतंत्र अपनी जड़ें मजबूत कर रहा है। लोग अब शिकायत कम और समाधान अधिक मांग रहे हैं।

बेशक चुनौतियां अभी भी बाकी हैं। सीमा पार से आतंक की साजिशें पूरी तरह रुकी नहीं हैं और कुछ इलाकों में अभी भी सुरक्षा बलों को सतर्क रहना पड़ता है। बेरोजगारी और महंगाई जैसे मुद्दे भी मौजूद हैं, लेकिन पहले की तुलना में अब इन समस्याओं पर खुलकर बात होती है और उनके समाधान के लिए काम भी हो रहा है। सरकार और सुरक्षा एजेंसियों के बीच बेहतर तालमेल है और खुफिया तंत्र भी अधिक मजबूत हुआ है।

अनुच्छेद 370 हटाने का फैसला केवल एक कानूनी बदलाव नहीं था, बल्कि यह एक मनोवैज्ञानिक बदलाव भी था, जिसने यह संदेश दिया कि जम्मू-कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और रहेगा। सात साल बाद आज यह कहा जा सकता है कि इस फैसले ने घाटी को बंदूक के साए से निकालकर विकास की राह पर आगे बढ़ाया है। आज कश्मीर का युवा भारत के साथ अपना भविष्य देख रहा है और यही इस बदलाव की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

5 अगस्त 2019 के बाद जम्मू-कश्मीर ने एक लंबा सफर तय किया है। डर की जगह भरोसे ने, बंद की जगह बाजार ने और अलगाव की जगह जुड़ाव ने ली है। अभी बहुत काम बाकी है, लेकिन दिशा सही है और इरादे स्पष्ट हैं। यदि यही गति बनी रही तो आने वाले वर्षों में जम्मू-कश्मीर न केवल देश का, बल्कि दुनिया के सबसे खूबसूरत, शांत और आकर्षक पर्यटन तथा निवेश केंद्रों में से एक बनकर उभरेगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)